योग-साधन माला, वर्ष ४ पुष्प १

ॐ

कर्म-मीमांसा

कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ॥ अथर्व० ६।२३।२

= मनुष्य कर्म करें ।

लेखक और प्रकाशक—
श्री स्वामी अभयानन्द सरस्वती,
योगमण्डल 'गुरुकुल' काशी ।

मुद्रक—शिवराम सिंह,
नेशनल प्रेस, बनारस

COMPILED

सम्वत् १९९३ वि०

मूल्य ।०) आने ।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
(१) कर्म क्या है ?	१
(२) कर्म का तत्त्व	३
(३) जीवों की संख्या	८
(४) चौराशी का चक्र	,,
(५) मनुष्यों से सर्व जीवों की सगोत्रता	९
(६) भोगयोनि और कर्मयोनि	६
(७) कर्मफल	१६
(८) योनि प्राप्ति	२४
(९) कर्मकर्त्ता तथा फल-भोक्ता शरीर है वा आत्मा	२७
(१०) हमारा कर्त्तव्य	३१

विज्ञप्ति

योगसाधनमाला काशी के चतुर्थ वर्ष में प्राप्त पुस्तकों की नामावली ।

जो कोई योगमंडल काशी द्वारा प्रकाशित योगसाधनमाला के स्थायी ग्राहक हैं अथवा नये ग्राहक होना चाहते हैं उन्हें विज्ञप्ति की जाती है कि उक्त माला के चतुर्थवर्ष में निम्न ६ पुष्प यथाक्रम गत वर्षों की भांति प्राप्त होंगे। वार्षिक मूल्य अग्रिम ३॥) साढ़े तीन रुपये इस वर्ष भी देने होंगे। पुस्तकों के नाम ये हैं—

(१) कर्म मीमांसा, (२) योगसोपान (योग की सीढ़ी) प्रथम भाग (३ योगसोपान द्वितीय भाग, (४) योगसोपान तृतीय भाग, (५) योगासनचित्रावली (सचित्र आसनों की विधि तथा फल), (६) यौगिक शब्द कोष ।

मंत्री—योगमंडल, काशी ।

गुरुकुल

* ओ३म् *

कर्म-मीमांसा।

कर्म क्या है?

पाठकवृन्द! सब से प्रथम इस विषय पर विचार करना चाहिये कि, कर्म क्या है? कर्म की व्याख्या यह है "यत्क्रियते तत्कर्म" अर्थात् जो किया जाय वह कर्म है। वैशेषिक शास्त्र के कर्त्ता महर्षि कणाद जी ने कर्म के पांच गुण निम्न प्रकार वर्णन किये हैं। यथा—

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुंचनप्रसारणगमनानि पंचकर्माणि। वै० अ० १ आ० १ सू० ७

१—ऊपर की ओर उठना, २- नीचे की ओर गिरना, ३- संकोचन (सिकुड़ना), ४- प्रसारण (फैलना), ५—बराबर चलना।

इन पांच कर्मों में जो चलना है वह गोल क्रिया के साथ है। अर्थात् जो कोई एक स्थान से बराबर चलता रहेगा तो किसी न किसी दिन वह फिर उसी स्थान को आजावेगा जहां से वह चला था। यही प्रत्येक प्राणी के जीवन का भी रहस्य है। सृष्टि का यह नियम है कि कर्म क्रिया द्वारा उठेगी वह अवश्य झुकेगी और जो सिकुड़ेगी वह फैलेगी। संसार में

कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जिसमें क्रिया बराबर न होती हो। जिस वस्तु में क्रिया बराबर जारी रहेगी वह वस्तु सर्वदा एक स्थित में नहीं रहेगी, उसमें परिवर्तन होता रहेगा। जिस प्रकार सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय है उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी के जीवन में भी तीन गति प्राप्त, भोग और त्याग बराबर देखने में आरहा है। संसार में कर्म का उद्देश्य किसी वस्तु को प्राप्त करना है अतः प्राप्त का उद्देश्य भोग और भोग का उद्देश्य, त्याग है। अर्थात् जितने कर्म किये जाते हैं केवल भोगने के लिये। जिस समय भोगना बन्द किया जायगा उसी समय कर्म का करना भी बन्द कर देन पड़ेगा। फिर उसके त्याग का समय भी न आवेगा। खाना भोग बोना कर्म है, परन्तु क्रिया दोनोंमें है। फल की समाप्ति भोग और फल कर्म है। भोग जेल में बचत का बिल पेश नहीं होता। "स्वतंत्रः कर्त्ता" कर्त्ता हर समय स्वतंत्र है। परन्तु केवल फल भोगने में परतंत्र है करे न करे उलटा करे यह गुण कर्त्ता में होता है इसका उलटा करण है। ध्यान में रहे 'प्रेरक' भी कर्त्ता होता है। करण कर्म के अधिकारी नहीं होता। कर्म के तीन फल हैं यथाः—

१—क्रियमाण, २ संचित, ३ प्रारब्ध। कर्ज (क्रियमाण) ब्याज (संचित), भोगना (प्रारब्ध)। जो कर्म को भोगता रहता है वह चक्रवर्ती नहीं हो सकता। "सकल पदारथ है जग माहीं बिना कर्म नर पावत नाहीं"। पिता की आज्ञा कर्म है। देखिये, गर्भ में बालक यह नहीं सोचता कि निकलूंगा तो क्या खाऊँगा। खाना देना परमपिता जगदीश्वर के अधीन है। उसने बालक को भरोसे के लिये माता के शरीर में दो स्तन इसीलिये बनाया, एक पीता है दूसरे को पकड़े रहता है। दूसरा लड़का दूसरे स्तन को नहीं पीसकता, लड़ता है।

अतः कर्म के फल भोगने के लिए कोई को चिंता नहीं करना चाहिये। भोगों का जिम्मेवार ईश्वर है। देखिये अगर पानी न बरसे तो नहर बना कर तुम क्या करोगे। कर्म का तत्त्व जानने के लिए इसके आगे आत्मा की व्याख्या देखिए:—

* कर्म का तत्त्व *

'आत्मा' शरीर धारण करके कर्म करता है। '**आत्मा**' का स्वभाव इसी शब्द से ज्ञात हो सकता है। '**अत्-सातत्य गमने**'। भ्वा० प० सं०॥ धातु से उणादि मनिन् प्रत्यय से आत्मा शब्द बनता है। '**अतति निरन्तरं कर्म फलानि प्राप्नोति व्याप्नोति वा स आत्मा।**' सतत गमन, सततकर्म, सतत-पुरुषार्थ करने का धर्म 'आत्मा' शब्द बता रहा है। निश्चित यह हुआ कि आत्मा सततकर्म करनेवाला है और शरीर उसके पुरुषार्थ का साधन है और बंधनों का निवारण करके पूर्ण स्वातंत्र्य की प्राप्ति करना उसके पुरुषार्थों का साध्य है।

जीवात्मा का दूसरा नाम '**क्रतु**' है क्रतु का अर्थ '**कर्म**' है। आत्मा का स्वभाव धर्म ही कर्म करना है यह भाव इस शब्द द्वारा प्रकट हो रहाहै। '**इन्द्र**' जीवात्मा का नाम है और उसको '**शत-क्रतु**' इसलिये कहते हैं कि वह इस शरीर में कम से कम सौ वर्ष रहकर क्रतु अर्थात् पुरुषार्थ करता रहता है। सौ वर्ष पुरुषार्थ करने का धर्म जीवात्मा का है यह भाव इस शब्द से सिद्ध होता है। शतक्रतु इन्द्र देवों का राजा है। देव शब्द शरीर में इन्द्रिय वाचक है। इन्द्रियों का राजा जीवात्मा है। यह ज्ञान यदि हर एक जीवात्मा को हो जायगा तो उसकी शक्ति बढ़ जाती है। इस शरीर रूपी कुरुक्षेत्र में विजय प्राप्त करने के

लिए मैं आगया हूं इस शरीर रूपी रथ में बैठकर दुष्ट विचार रूपी शत्रुओं के साथ युद्ध करनेवाला मैं 'विजय' हूं। मेरा नाम 'विजय' होने से मेरा पराजय कोई नहीं कर सकता, क्योंकि मेरा सारथी परमात्मा है, मेरे साथ धर्म और आत्मिक बल मेरा सहायक है। सब देवों की अर्थात् इन्द्रियादिकों की अद्भुत शक्ति मेरे पास है इसलिये इस जीवन कलह की युद्ध भूमि में—स्थिरता के साथ युद्ध करूँगा और अवश्य विजय प्राप्त करूँगा।

शरीर प्राप्त जीवात्मा का नाम जो मनुष्य है इस शब्द का भी भाव 'विचारशील' होता है अर्थात् जो मनन कर सकता है। उसे नर भी कहते हैं। नर का अर्थ नेता है अर्थात् दूसरों को सत्य मार्ग पर चलानेवाला जो होता है उसका नाम नर होता है। सब लोगों को सन्मार्ग बताने का पुरुषार्थ करने वाला ही नर कहलाता है। तथा (न—रम्) जो अपने स्वार्थ में नहीं रमता, परोपकार के लिये ही अपना सर्वस्व अर्पण करता है। उसको भी नर कहते हैं। इत्यादि शब्दों से तात्पर्य यही निकलता है कि जीवात्मावाची संपूर्ण शब्दों का भाव यही प्रकट होता है कि जो सच्चे धार्मिक बनना चाहें उन्हें उचित है कि वे अपने पास से निरुत्साह को दूर करें और उत्साह पूर्ण विचारों को ही अपने पास सदा रखें और पुरुषार्थ से कभी मुँह न मोड़ें।

'इस जगत् में पुरुषार्थ करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा धारण करनी चाहिए।' (यजु० ४०।२) यह वेद की आज्ञा जगत् में प्रसिद्ध है। शतपथ में कहा है— 'कर्म कुरु'॥ शत० ११।५।४।५। अर्थात् 'कर्म—कर।' हरएक मनुष्य को कर्म करना आवश्यक है। इस विषय में और उपदेश देखिए—

कर्म कृण्वंतु मानुषाः ॥ अथर्व० ६।२३।२

कर्मणे वां । यजु० १।६

कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ॥ ऋ०८।८६।११

कर्माराये मनीषिणः ॥ अथर्व० ३।५।६

"मनुष्य कर्म करें। आपको कर्म के लिये ही उत्पन्न किया है। धीर लोग उद्योग करते हैं। जो बुद्धिमान होते हैं वे उद्यमशील होते हैं। ये सब उपदेश मनन करने योग्य हैं तथा—

कर्म च मे शक्तिश्चमे ॥ यजु० १८ । १५

'मेरी पुरुषार्थ करने की शक्ति और मेरा पौरुष कर्म सत्कृत्य रूप बने।' यह इच्छा अत्यन्त प्रभावशाली है। यदि सब लोगों के अन्तःकरणों में ये वेदामृत उपदेशों का प्रकाश हो जाये तो निस्सन्देह सब कष्ट दूर हो जावेंगे।

कर्म करना अवश्य है, तथा मनुष्य का अथवा जीवात्मा का स्वभाव धर्म ही कर्म करने का है, इतनी बात सिद्ध हो गई।

कर्मसेही जनक आदिकों ने उत्तम सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज योगेश्वरथे, उनका आदेश भी कर्म करने के लिये ही है। सब जगत् कर्म पर खड़ा है फिर आपही कर्म के बिना कैसे ठहरेंगे। सोचिये और प्रबल पुरुषार्थ करने का निश्चय कर के उठिए। ऋग्वेद में मंत्र आया है **"न ऋते श्रांतस्य सख्याय देवाः"** । ऋ० ४। ३३ अर्थात् 'परिश्रम करने के बिना देव मित्रता नहीं करते' इस प्रकार सतत पुरुषार्थ का महात्म्य वेदादि ग्रंथों में बहुत से भरे पड़े है। देखिये भगवान् श्री कृष्ण जी गीता में किस प्रकार कर्म करने की शिक्षा देते हैं।

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृति जैर्गुणैः ॥
गी० अ० ३ श्लो० ५

'न कोई एक क्षण भर भी बिना कर्म के ठहर सकता है। क्योंकि प्रकृति से उत्पन्न हुए गुण सब प्राणियों को कर्म अवश्य कराते हैं।' गीता में उस कर्म की विशेष प्रशंसा की गई है जो निष्काम किया जाता है। यथाः—

कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन ।
मा कर्म फलहेतुर्भू र्मातेसङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

कर्त्तव्य में ही तेरा अधिकार है फल में कभी नहीं । तू कर्म के फल का उद्देश्य नरख और कर्त्तव्य कर्म से रहित होने की इच्छा भी नरख। पुनः यह भी उपदेश गीता में बल पूर्वक किया है, यथाः—

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तुकर्म संन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते ॥

संन्यास और कर्मयोग, ये दोनों ही मोक्ष देनेवाले हैं । पर इन दोनों में कर्म संन्यास अर्थात् त्याग की अपेक्षा कर्म योग अर्थात् निष्काम कर्म का आचरण श्रेष्ठ है।

कर्म की फीलासफ़ी बतलाती है कि, जिस वंश (योनि) में उत्पन्न हुए हो उस वंश की परम्परा कर्त्तव्य अर्थात् जो वैदिक काल से मान्य होता आया हो करो। क्योंकि अकर्मण्य लोग झगड़ा करते हैं ।

याद रखो मन के किये हुए कर्म मन से भोगोगे। वाणी से किये हुए कर्म वाणी से और शरीर से किये हुए कर्म शरीरसे साझा में कर्म करोगे तो साझा में भोगोगे। और यदि साझे में

न भोगे तो उसमें एक चोर जैसा बतला देगा। अर्थात् अकेले नहीं भोग सकोगे। अकेले कर्म करनेवाला कर्म अकेले भोगा जायगा। अपने शरीर पर दृष्टि डालो, नेत्र पांव को राह दिखाते, पैर वहां ले जाते, हाथ उठाता, मुंह को देता, मुख पेट में पहुंचाता, पेट बात पित्त कफ बनाकर नख से शिख तक पहुंचा देता है। यदि इनमें स्वार्थपना (अकेले भोगने का) उत्पन्न हो जावे तो सारे के सारे अपनी शक्तियां खो बैठेंगे। इसी प्रकार यदि साझे के कर्म में अकेले भोगने की बुद्धि जिस किसी में आवेगा फिर उसका सत्यानाश ही जानना चाहिए। कर्म के बाधक स्वार्थी होते हैं।

फल कर्म करनेवाले की नियत पर है जैसे—हमने ढेला चलाया कौआ मर गया, इधर कौआ का भोग हो गया। इस कर्म का फल ढेला चलानेवाले को प्राप्त होगा। कर्म तीन के वश किया जाता है। लोभ, काम और मोह। और यही तीन गुणवाले हो जाते हैं, सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। परन्तु स्वभाव में पाप नहीं होता, जैसे आंख का खोलना बंद करना, यदि कोई सिपाही किसी को तलवार से मारा तो यहां तलवार कारण है अतः वह दूसरे चीज से भोगेगा अर्थात् फांसी से। फल पिता जानता है कर्म पुत्र जानता है। जैसे पुत्र पढ़ता है दूसरा उसके लिये जगह देता है।

आत्मा सब की एक है केवल परमात्मा ने उसके कर्मानुसार शरीर भिन्न २ प्रकार के बांट दिये हैं। जैसे—कोई चपरासी बेगारवाले को पकड़कर ले गया, रास्ते में एक नदी पड़ी किनारे पर सीपाही अपनी वर्दी उतार कर शौच के लिए गया, उसी समय बेगार ने उसके बर्दी को पहन लिया और स्वयं अपने को चपरासी होना समझ लिया और उसे यह बोध हो गया कि केवल वर्दी पहिनने से ही इस मनुष्य ने हमें

बेगार में पकड़ा था क्योंकि बर्दी उतार देने पर जैसा वह वैसा मैं भी हूं। इसी प्रकार संपूर्ण जीवधारियों के केवल शरीर उनके कर्मानुसार भिन्न २ देखने में आरहे हैं और नामभी भिन्न २ सुनने में आते हैं। यथार्थ में संम्पूर्ण जीव एक हैं।

* जीवों की संख्या *

जीवों की संख्या यथार्थ में अनन्त हैं परन्तु कई ग्रन्थों में ८४ लक्ष योनियों की संख्या का प्रमाण मिलता है, यथा—

वृहद् विष्णु पुराण में लिखा है, कि जीवों में क्रमपूर्वक प्रथमयोनि उद्भिजों की है, उसमें प्रत्येक जीव को २० लाख वार जन्म लेना पड़ता है। तदन्तर ११ लाख वार जीव को स्वेदज अर्थात् मैल से उत्पन्न कृमि कीटादि की योनि प्राप्त करना पड़ता है। तदनन्तर १० लाख वार जीव अंडज अर्थात् अंडे से उत्पन्न होनेवाले जीवों की योनिको प्राप्त करना पड़ता है। उसमें ६ लाख वार जल में उत्पन्न अंडज योनि जीव को प्राप्त होती है। तदनन्तर ३ लाख वार जीव को पशु योनि में भ्रमण करना पड़ता है, उसमें अन्तिम ४ लाख वार वानर योनि में जन्म होता है। इसप्रकार ८४ लाख योनि में भ्रमण कर जीव मनुष्य योनि को प्राप्त करता है। "कर्मवैचित्र्यात् सृष्टि वैचित्र्यम्" नि० कर्म की विचित्रता से सृष्टि विचित्र प्रकार की हुई।

* चौरासी का चक्र *

अनन्त जीवों में से उक्त ८४ लाख योनियों की संख्या जिस प्रकार विद्वानों ने स्थिर किये हैं उसीप्रकार ८४ लाख में से ८४ का चक्र निम्न भांति योजनाकी है, यथा:—५ तत्व का पंचीकरण करो २५ होगा। इसमें तीन गुणों (सत-रज-तम)

से गुणा करो ७५ होगा। फिर ३ गुणों को आपस में गुणन कर दो तो ६ होगा।—अर्थात् ७५+६ मिलकर ८४हुए। यही चौरासी का चक्र जानना चाहिये। इसी चौरासी को विस्तार करते२ चौरासी लक्ष योनियों का निश्चय मान लिया गया है और संतोष किया गया है।

❁ मनुष्यों से सर्व जीवों की सगोत्रता ❁

वृ० वि० पु० से सिद्ध हुआ कि मनुष्य योनिवाले जीवों की प्राणीमात्र (सर्व जीवों) से सगोत्रता अर्थात् सम्बन्ध है। कुत्तों के पूर्वज शृगाल, भेड़िया (बीग आदि)। बिल्ली तो शेर की मौसी प्रसिद्धही है। चींटी, चिवटा आदि के पूर्वज सर्प हैं। विचार दृष्टि से देखने पर मालूम होगा कि कुत्ते, बिल्ली, गौ, बैल, तथा अन्य पशु पक्षी आदि बहुत से जीव (प्राणी) मनुष्य के समीप रहते हैं मानों मनुष्य जाति को वे लोग अपना पूर्वज समझते हैं। परन्तु शोक के साथ आप देखेंगे कि मनुष्य सहस्रों छोटे बड़े जीव जन्तुओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखता हुआ काम, क्रोध, लोभ, मोह, झूठे अहंकार, तृष्णा, मत्सर, ईर्षा, दुराग्रह, निर्बलता तथा आलस्य के वश होकर उन प्राणियों से शिक्षा ग्रहण नहीं करता। यही बड़ा भारी आश्चर्य है। मानो अन्य योनिवाले जीव सब से उच्च मनुष्य योनि में आने की तैयारी कर रहे हैं और मनुष्य योनि वाले जीव अपने से नीच योनि में जाने की तैयारी कर रहे हैं। शोक! शोक! महान् शोक!!!

❁ भोग योनि और कर्म योनि ❁

मनुष्य योनि को छोड़ कर जितनी भी योनियाँ पशु से लेकर वनस्पति पर्यन्त हैं वह सब भोग योनि हैं। मनुष्य योनि

भोग तथा कर्म दोनों हैं और आदि अमैथुनि सृष्टि के मनुष्य कर्म प्रधान योनि पाते हैं। जिस प्रकार कैदखाने (बन्दी गृह) के कैदी स्वतंत्रता रहित हैं उसी प्रकार सर्व भोग योनियां समझनी चाहिए। एक एक भोग योनि के गुण कर्म स्वभाव विचित्र हैं। कई पशु पक्षी बहु स्त्रीगामी होते हैं कई चकवा चकवी आदि दम्पति व्रत होते हैं। कई पशु फल अनाज खाते हैं कई मांस कई कीड़े इत्यादि। एम. ए. क्लाश के विद्यार्थियों को कभी बहुत निचली क्लास के विद्यार्थी का अपने आदर्श नहीं बनाने चाहिए ठीक उसी प्रकार मनुष्य योनि सब पशु आदि भोग योनि से पृथक् है, इस श्रेष्ठ मनुष्य योनि का आदर्श कभी कोई भोग योनि का पशु नहीं हो सकता। भोग योनि में एक मान्य नियम यह देखने में आता है कि बलवान निर्बल को पीड़ा देता है यह पशु स्वभाव मनुष्य को अंगीकार नहीं हो सकता। "जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों का दुःख देते और मार भी डालते हैं; जब मनुष्य शरीर पाके वैसाही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थ वश होकर पर हानि मात्र करता रहता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है। इसलिये मनुष्य योनि का आहार विचार और व्यवहार पशु योनि के समान वा उसके अनुकरण में होना कभी उचित नहीं हो सकता। योग शास्त्र में—" भोग अपवर्गार्थं दृश्यम्"। २। सू० १८ इस सूत्र में महर्षि पतञ्जलि सृष्टि का प्रयोजन मनुष्यों को भोग और मोक्ष दोनों में साधन बनना बतलाते हैं। कहाँ यह आदर्श और कहाँ लाठी भैंस के सिद्धान्त का आदर्श! यद्यपि पशु आदिकों की भोग योनि है पर सर्व साधनों से पूर्ण है।

वही यन्त्रकार स्तुति का पात्र है, जो अपने यंत्र के पुर्जे मजबूत बनाता है। ईश्वर जो कि अनन्त विद्या और अनन्त शक्तिमय है उसने आदि सृष्टि के जीवों के शरीर रूपी पुर्जे ऐसे उत्तम और दृढ़ बनाये हैं कि जिनका विचार करते हुए मनुष्य की बुद्धि चकित रह जाती है। हम उसको "पूर्णसाँचे" का नाम दे सकते हैं। प्रत्येक शरीर को इंजिन (कला यंत्र) की न्याई अहार आवश्यकता है और प्रत्येक शरीर अपने में से मलिन पदार्थ निकाल कर इसको शुद्ध रखता है।
मनुष्य की टांगें और हाथों की रचना mechanics मेकेनिक्स यांत्रिकगति के पाठ बड़े बड़े शिल्प शास्त्रियों को पढ़ा रहे हैं। nervous system (नस विभाग) की रचना, तार घर का गुरु बन रही है। आंख की बनावट समझ कर मनुष्य ने फोटोग्राफी का शिक्षण लिया।

सृष्टि में प्रत्येक शरीरधारी का शरीर जो पूर्जारूपी है ऐसा बनाया गया है कि वह अमुक प्रयोजन को सहज से पूर्ण कर सके, और जिस समय तक प्रयोजन को पूर्ण करना है उस समय तक वह पुर्जा दृढ़ होने से बराबर टिका रहे और समय से पूर्व घिस न जाए। इसीलिए योग शास्त्र में कहा गया है कि—

सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। २ सू० १३

अर्थात् कर्म भोग होने पर जाति, जाति की आयु और उसका सुख दुःखादि भोग तथा उसका साधन मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि अमुकजाति के प्राणी अमुक कालतक जी सकते हैं। मनुष्य जाति की आयु १०० सौ वर्ष की है और निम्न लिखित प्राणियों की आयु का ब्योरा इसप्रकार है।

बन्दर..................२१ वर्ष

शशक...........	८ वर्ष
कुत्ता............	१४ ,,
सर्प............	१२० ,,
कछुआ........	१५० ,,

—वृद्धि, स्थिति और मृत्यु यह तीन नियम शरीरों पर काम कर रहे हैं न कि एक ॥ ईश्वरीय नियम द्वारा शरीर में जीव अपने कर्मोंके कारण आता है। इस शरीर में आनेसे वह पूर्व जन्ममें किसी शरीर में था और मरने के पीछे किसी शरीर को पावेगा यह हमें विचार करना होगा। पूर्व जन्म को सिद्ध करने के लिये यहां दो ही बातें लिखनी बस है।

(क) उत्पन्न हुआ बछड़ा अथवा मानवी बच्चा दूध के लिये चेष्टा करता और मा का स्तन चिचोड़ने के लिये (बिना उसको चिचोड़ना, सिखाने के) मुख से चेष्टा करता है।

(ख) एकही श्रेणी में बीस बालक पढ़ते हैं। कोई तीव्र बुद्धि कोई मन्द बुद्धि सिद्ध होता है। जिसके उत्तम संस्कार उसके सूक्ष्म शरीर में रह गये और अब स्फुरित होने लगे।

'वायुरनिलममृतम्'—यजुर्वेद के इस मंत्र में "सूक्ष्म-शरीर" का वर्णन आया है।

—उत्पत्ति स्थिति और क्षय के उक्त त्रिविध नियमों को उत्तम वर्णन मानवधर्मशास्त्र अध्याय १२ के श्लोक १२४ में इस प्रकार मिलता है:—

एवंसर्वाणिभूतानिपञ्चभिर्व्याप्यमूर्तिभिः।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयतिचक्रवत् ॥

अर्थः—यह परमात्मा सब जीवों को पञ्च महाभूतों से व्याप्त कराकर नित्य चक्र के समान जन्म वृद्धि क्षयों से घुमाता है। शरीरों के नाना रूप होने के कारण जीवों के नाना प्रकार के कर्म हैं। इसलिये यह शरीरों के नानारूप वा आकृति chance अकस्मात् वा भूलसे नहीं बनाए गये। जिसके कर्म मोरके शरीर में जाने के हैं उसको मोर का शरीर मिला है।

प्रत्येक शरीर जो वृद्धि स्थिति और मरण के नियमों में बद्ध है वह मानो ईश्वरीय अद्भुत यंत्र है। ईश्वर ने प्रत्येक अनोखे शरीर में ऐसा विचित्र पुर्जा जड़ दिया है कि जिसके द्वारा शरीर का सार निकल कर बीज बन् काम दे और नर नारी बीज मिलकर वैसाही शरीर बनाने में साधन हो सकें।

आजतक ऐसी घड़ी कोई नहीं बना सका कि दो घड़िएं मिलकर अपने समान एक तीसरी बच्चा घड़ी बना सकें। पर प्राणियों के शरीर सचमुच विचित्र कला हैं जो एक जाति के दो शरीर मिलकर तीसरा बच्चा रूपी शरीर बना सकें।

Protoplasm ओज, अंग अंग से उत्पन्न हुए वीर्य्य का सार है वही जीवनाधार है। मनुष्य कृत मशीन से मशीन आज तक नहीं बनी, पर यह ओजमय शरीर रूपी मशीनें बनानेवाले ईश्वर ने ऐसी विचित्र बनाई हैं कि इनसे आगे शरीर रूपी मशीन बने।

अब हमें दो बातों पर विचार करना है, प्रथम हम पहिली बात को लेते हैं अर्थात् ईश्वर ने पहिले पहिल किस प्रकार किस उद्देश्य को लेकर शरीर रचना की? हम देखते हैं कि घड़ी बनानेवाला एक एक पुर्जे को बना, उन सबको इकट्ठा लगा घड़ी बनाता है। यह अवस्था आदि अमैथुनी सृष्टि की समझनी चाहिए। टकसाल में पहिले सांचा बनाया जाता

है, फिर इस सांचे से सिक्का ढाला जाता है। मोहरें रुपये और पैसे ढालने के सांचे पृथक् पृथक् बनाए जाते हैं। प्रत्येक सांचा जितना उत्तम दृढ़ बनाया जाता है उसके दृष्टान्त कला भवन आदि कालिजों में हम रोज देखते हैं। सांचे में से जो मोहरें रुपए और पैसे पहले निकले वह अति उत्तम और चिरस्थायी होते हैं। आदि सृष्टि में चोरासी लाख प्रकार के सांचे बनाए गए और ईश्वर ने इन मैशीन रूपी सांचों में ऐसे पुर्ज़े जड़ दिए, जिससे प्रत्येक सिक्का आगे सिक्का बनाने के लिए सांचे का भी काम देसके। जो मनुष्य पहले सांचे की न्याई बनाए गये थे, उनके शरीर जिस दर्जे के उत्तम और पुष्ट हो सकते हैं, उतने उनमें से उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों के नहीं हो सकते। यदि कभी आदि सांचे से निकले हुए पहिले सिक्कों के समान और सिक्के भी निकलते जायें तो कोई हरज नहीं। पर बीच के वा अन्त के सिक्के आदि सिक्कों के समान हो सकते हैं उससे बढ़कर आगे नहीं जा सकते। सांचे का आकार निःसंदेह उन सिक्कों से बिलक्षण पुष्ट और अवश्यमेव बड़ा होना चाहिए। यह बात प्रत्यक्ष है, इसमें कोई विवाद नहीं कर सकता। इस दृष्टान्त से हम कह सकते हैं कि वह प्राणी जिनके शरीर माता पिता के संयोग के बिना आदि सृष्टिमें ईश्वर ने रचे उन्होंने साचों का काम किया और इसीलिये आदि अमैथुनी सृष्टि के जीव देव, साध्य और ऋषि कोटि के थे ऐसा हम यजुर्वेद अध्याय ३१ में पाते हैं। देव, साध्य और ऋषि यह मनुष्य की उन्नत परमावधि को पहुंची हुई तीन अवस्थाओं के तीन नाम हैं। सांचो का आकार और बनावट निस्सन्देह उसमें से निकलनेवाले सिक्कों के लिए आदर्श का काम देता है।

—'आदि अमैथुनि सृष्टि के सर्व शरीर सांचें समझने चाहिये। इनके मैथुन से जो मैथुन सृष्टि के शरीर

बने, वह टकसाल के पहिले सिक्के थे। इसके पीछे जितने भी मैथुनी सृष्टि की संतान चली यह आदि अमैथुनि सृष्टि के शरीर रूपी सांचों (प्रवर्त्तक शरीरों) से कभी बढ़िया नहीं हो सकती। पूरायत्न करें तो उनके समान ही हो सकती है। आदि अमैथुनि सृष्टि वालों को हम सचमुच कुदरत के बच्चे वा ईश्वरीय संतान् कहसकते हैं।

दिन का समय नियत है, रात का भी समय नियत है। मास और वर्ष का समय नियत है। सब प्राणी अमुक समय तक जी कर फिर मरजाते हैं। गर्भ में मनुष्य का बच्चा सौर्य्य नव मासही बास करता है। प्रत्येक पशु के गर्भ निवास का समय नियत है। मनुष्य की लंबाई नियत है। मनुष्य का शिर और शरीर के सर्व अंग नियत आकार के होते हैं। ऋतुएं नियत हैं। इसी प्रकार मनुष्य की उन्नति भी नियत ही होना चाहिये और है। इस नियत उन्नति के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार भाग हैं।

आदि अमैथुनी सृष्टि के मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही चार मानवी जीवन उद्देश्य लेकर जन्मे थे और यही आज हमारे जीवन उद्देश्य हैं।

आदि मैथुनी सृष्टि के मनुष्य भी प्रायः बहुत अच्छे होने चाहिये ठीक जिस प्रकार कि सांचों से निकले हुए पहिले सिक्के होते हैं। इसीलिए महाभारत में हम पढ़ते हैं कि आदि मैथुनी सृष्टि के मनुष्य बहुत उच्चकोटिकेथे। महाभारत के आदिपर्वमें लिखा है कि "सब ही ब्राह्मण वर्णकेथे और सबही धर्मपालन द्वारा परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते थे, दंड देने वाला दंड लेनेवाला कोई न था"। किसी नदी का पानी जब श्रोतसे निकलता है तो अधिक पवित्र होता है और ज्यूं २ आगे बढता जाता है त्यूं २ यदि पूरीसँभाल न की जावे तो अपवित्र होनेकी संभावना रहती है।

* कर्मफल *

पूर्व लेखों में बतला आये हैं कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र परन्तु फल प्राप्त करने में परतंत्र है। यथा प्रमाणानि:—

"अवश्यमेवभोक्तव्यंकृतंकर्मशुभाशुभम्" महाभारते

अर्थात् शुभाशुभ किये कर्म का फल अवश्य भोगना होगा

"कर्मप्रधानविश्वकरिराखा, जो जस करे सो तस फल चाखा"। तु० रा०। कर्म फल प्राप्ति के विषय में वेद भगवान् क्या कहते हैं देखिये—

उग्रश्चभीमश्चध्वान्तश्चधुनिश्चसासह्वांश्चाभियुग्वाचविक्षिपःस्वाहा ॥ यजु० ३८ मं० ७

मरणान्तर जीव स्वकर्मानुसार तीव्र, शान्ति, स्वभाव और भयकारक, व निर्भय तथा अन्धकार व प्रकाश को प्राप्त काँपता, निष्कम्प, सहनशील, न सहनेवाला, नियमधारी और सबसे पृथक् तथा विक्षेप के स्थान को प्राप्त होता है। छान्दोग्य उपनिषद् में कर्म फल के विषय में लिखा है। यथा—

तद्य इहरमणी चरणा अभ्याशो हयत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मण योनिंवा क्षत्रिय योनिंवा वैश्ययोनिंवा। अथ इह कपूयचरणा अभ्याशो हयत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिंवा शूकर योनिंवा चाण्डाल योनिंवा ॥

छा० उ० ५ प्र० १० खं० श्लो० ७

जिनका यहां चरित्र शुद्ध रहा है, वह शीघ्र उत्तमयोनि को

प्राप्त होवेंगे चाहे ब्राह्मण की योनि को, वा क्षत्रिय की योनि को, वा वैश्य की योनि को और वह जिनका चरित्र यहां नीच रहा है, वह शीघ्र ही नीच योनि को प्राप्त होंगे—चाहे कुत्ते की योनि को सूअर की योनि को वा चाण्डाल की योनि को।

*** योनिरहस्य ***

ब्रह्मचर्य खंडित कर जो जितनी बार अपने जीवन में निज वा अन्य स्त्री की योनि से सम्बन्ध करता है वह उतनी बार योनि में आता है।

'अभय'

महर्षि मनु भगवान् ने मनुस्मृति के १२ वें अध्याय में श्लोक ३ से कर्म फल के विषय में निम्न प्रकार वर्णन किया है। यहां पर केवल श्लोकार्थ लिखता हूं।

(३) मन, वाणी तथा शरीर से उत्पन्न शुभाऽशुभ फल वाले कर्म से मनुष्य की उत्तम, मध्यम अधम गति (जन्मान्तर की प्राप्ति) होती है।

(४) उस देही के उत्तम, मध्यम, अधम और मन, वाणी, शरीर के आश्रित फल के देनेवाले तीन प्रकार के १० लक्षण युक्त कर्म का चलानेवाले मन को जानो।

(५) अन्याय से पर द्रव्य लेने की इच्छा और मनसे (पराया बुरा चाहना तथा "परलोक में कुछ नहीं है" ऐसा विश्वास, यह तीन प्रकार का मानस (पाप) कर्म है।

(६) कठोर और असत्य भाषण तथा सब प्रकार की चुगली और असम्बद्ध बकवाद करना, यह चार प्रकार का वाङ्मय (पाप) कर्म है।

(७) अन्याय से दूसरे का धन लाना और शास्त्र के विधान (दण्डनीय=वध्य के वधादि) से अतिरिक्त हिंसा तथा दूसरों की स्त्री से गमन करना, यह तीन प्रकार का शारीरिक (पाप) कर्म है।

(८) मन से किये हुये शुभ अशुभ कर्म फल का मनही से, वाणी से किये हुये का वाणी से और शरीर से किये हुये का शरीर ही से यह (प्राणी) भोग करना है।

(८ वें से आगे एक पुस्तक में यह निम्न श्लोक अधिक है)

३ प्रकार का शारीरिक, ४ प्रकार का वाचिक और ३ प्रकार का मानसिक, यह १० अधर्म के मार्ग त्यागने चाहिये ॥ ८ ॥

(९) शरीर के कर्म दोषों से मनुष्य वृक्षादि योनि और मृगकी योनि तथा मन के कर्म दोषों से चण्डालादि कुल में उत्पत्ति पाता है। (९ वें श्लोक से आगे ४ पुस्तकों में यह निम्न श्लोक अधिक है)।

—शुभ कर्मों से देव भाव, शुभाशुभमिश्रितों से मनुष्य भाव की प्राप्ति और केवल अशुभों से नीच योनियों में जन्मपाता है एक अन्य पुस्तक सहित ५ पुस्तकों में निम्न लिखित और भी मिलता है।

—बिना रक्षा किया हुआ वाग्दण्ड विज्ञान को,मनो दण्ड परमगति को और कर्मदण्ड तीनों लोकों को नष्ट करता है।

(तथा एक अन्य पुस्तक सहित ५ पुस्तकों में यह श्लोक और भी पाया जाता है)

—मौन को वाक्दण्ड, अनऽशन को मनोदण्ड और प्राणायाम को शारीरिक दण्ड कहते हैं ॥ ६ ॥

(१०) वाणी का दमन (अशुभ कर्म से रोकना) तथा मन का दमन और काय का दमन, ये तीनों जिस की बुद्धि में स्थित हैं वह "त्रिदण्डी" कहाता है।

(११) मनुष्य सम्पूर्ण जीवों पर इन तीनों प्रकार का दमन करके काम, क्रोधों को रोक कर फिर सिद्धि को प्राप्त होता है।

(१२) जो इस आत्मा को कर्म में प्रवृत्त करनेवाला है उसको "क्षेत्रज" कहते हैं और जो कर्म करता है, बुद्धिमान् लोग उसको भूतात्मा कहते हैं।

(१३) सम्पूर्ण देहियों के साथ होनेवाला दूसरा जीव संज्ञावाला (अन्तःकरण) अन्तरात्मा है, जिससे जन्मों में संपूर्ण सुख दुःख जाना जाता है।

(१४) वे दोनों महान् और क्षेत्रज जो कि पृथ्वीऽयादि पञ्चभूतों से मिले हुये हैं, ऊंच नीच सब भूतों में स्थित उस (परमात्मा) के आश्रय रहते हैं ॥ (१४ वें से आगे एकश्लोक तीन पुस्तकों में मिलता है)

—उत्तम पुरुष तो अन्य है जो "परमात्मा "कहाता है और जो तीन लोकों में प्रविष्ट, समर्थ और अविनाशी होने से इनका धारण और पोषण करता है।

(१५) उस (परमात्मा) के शरीर तुल्य पञ्चभूत समुदाय से असंख्य शरीर निकलते हैं जो कि उत्कृष्ट निकृष्ट प्राणियों को निरन्तर कर्म कराते हैं।

(१६) दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्यों का मरकर पञ्च-तन्मात्रा से दुःख सहन करने के लिये दूसरा शरीर अवश्य उत्पन्न होता है।

(१७) उस शरीर से यम (परमात्मा) की दी हुई यातनाओंको यहां भोगकर प्राणी उन्हीं भूतमात्रों में विभाग से फिर छिप जाते हैं।

(१८) वह प्राणी निषिद्ध विषयों के उपभोग जनित दुःखों को भोगकर पाप को दूर करके बड़े पराक्रमवाले उन्हीं दोनों (महान और क्षेत्रज्ञ) को प्राप्त होता है।

(१९) वे आलस्य रहित (महान् और क्षेत्रज्ञ दोनों) उस प्राणीके पुण्य और पाप को देखते हैं। जिनसे मिला हुआ इस लोक तथा परलोक में सुख और दुःख को प्राप्त होता है।

(२०) वह जीव यदि अधिक धर्म कर्म करता है और अधर्म थोड़ा, तो उनही उत्तम पंचभूतों से युक्त स्वर्ग में सुख को भोगता है।

(२१) और यदि वह जीव पाप अधिक और पुण्य थोड़ा करे तो उन उत्तम भूतों से त्यक्त हुआ यम की यातनाओं को प्राप्त होता है।

(२२) उन यम की यातनाओं को प्राप्त होकर वह जीव (भोग से) पाप रहित होने पर फिर उन्हीं उत्तम पञ्चभूतों को क्रमसे प्राप्त हो जाता है॥

(२३) इस जीव की धर्म और अधर्म से इन गतियों को अपने मनसे ही देखकर सर्वदा मनको धर्म में लगावे॥

(२४] सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीनों को आत्मा (प्रकृति) के गुण जाने, जिनसे व्याप्त हुआ यह "महान्" स्थावर जङ्गम रूप सम्पूर्ण भावों को अशेषता से व्यापक (स्थित) है।

(२५) जिस शरीर में गुणों में से जो गुण पूरा पूरा अब अधिक होता है, तब वह उस प्राणी को उसी गुण के अधिक लक्षण युक्त कर देता है।

(२६) यथार्थ वस्तु का जानना सत्व का लक्षण और उसके विपरीत = न जानना = अज्ञान = तम का और रागद्वेष रज के लक्षण हैं। इन सब प्राणियों का आश्रित शरीर इन सत्वादि गुणों की व्याप्ति वाला होता है।

(२७) उन तीनों में से जो कुछ प्रीति से मिला हुआ और शान्त प्रकाशरूप सा आत्मा में जाना जावे उसको सत्व जाने।

(२८) और जो दुःख से मिला हुआ तथा आत्मा की अप्रीति करे और सर्वदा शरीरियों को विषयों की ओर प्रतीकूल खींचनेवाला है, उसको रज जाने।

(२९) जो मोह से युक्त हो, प्रकट न हो तथा विषयवाला हो और तर्क और बुद्धिद्वारा जानने योग्य न हो उसको तम समझे।

(३०) इन (सत्वादि) तीनों गुणों का यथाक्रम उत्तम, मध्यम, अधम जो फलोदय है, उस सम्पूर्ण को आगे कहता हूं।

(३१) वेद का अभ्यास, तप, ज्ञान, शौच, इन्द्रियों का निग्रह, धर्मक्रिया और आत्मा का मनन, ये सत्वगुण के लक्षण हैं।

(३२) आरम्भ में रुचि होना, फिर अधैर्य, निषिद्ध कर्म को पकड़ना और निरन्तर विषयभोग, यह रजोगुण का लक्षण है।

(३३) लोभ, नींद, अधीरता, क्रूरता, नास्तिकता, अनाचारीपना, याचन स्वभाव और प्रमाद, यह तमोगुण का लक्षण है।

(३४) इन तीनों (सत्वादि) गुणों का जो कि तीनों में रहने वाले हैं, यह क्रम से संक्षिप्त गुण लक्षण जानना चाहिये कि—

(३५) जिस कर्म को करके और करते हुये और आगे करने का विचार करते हुये (तीनोंकाल में) लज्जा करता है। उस सबको विद्वान् तम का लक्षण जाने।

(३६) जिस कम से इस लोक में बड़ी प्रसिद्धि को चाहता है असम्पत्ति (असिद्धि) में शोक नही करता उसको राजस जाने।

(३७) जिस कर्म को सर्वथा जानने के लिये इच्छा करता है और जिस कर्म को करता हुआ (तीनोंकाल में) लज्जित नहीं होता, तथा जिस कर्म से इसके मन को आनन्द हो, वह सत्वगुण का लक्षण है।

(३८) तम का प्रधान लक्षण काम है और रज का प्रधान लक्षण अर्थ कहाता है। तथा सत्व का प्रधान लक्षण धर्म है इसमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है।

(३९) इन सत्वादि गुणों में जिस गुण से जीव जिस गति को प्राप्त होता है, इस सबके उस गुणको संक्षेप से यथाक्रम कहता हूं।

देवत्वं सात्विका यान्ति, मनुष्यत्वंच राजसाः।
तिर्यक्त्वंतामसानित्यमित्येषात्रिविधागतिः॥

(४०) सात्विक, देवत्व और राजस मनुष्यत्व को तथा तामस सदा तिर्यक् योनि को प्राप्त होते हैं। इसप्रकार तीन प्रकार की गति है।

(४१) जो सत्वादि गुणत्रय निमित्त तीन प्रकार की गति कही वह देश कालादि भेद से फिर भी उत्तम, मध्यम, अधम

तीन तीन प्रकार की है और फिर कर्म का विशेष (अनन्त) जानना चाहिये।

(४२) वृक्षादि, कृमि, कीट, मत्स्य, सर्प, कछुवे, पशु और मृग, यह तमो निमित्त निकृष्ट गति है।

(४३) हाथी, घोड़े, शूद्र, निन्दित म्लेच्छ, सिंह, व्याघ्र और सूकर, यह तमो निमित्त मध्यम गति है।

(४४) और चारण (खुशामदी) तथा पक्षी और दम्भ करनेवाले पुरुष और राक्षस (हिंसक) तथा पिशाच (अनाचारी) यह तमोगतियों में उत्तम गति है।

(४५) झल्ल, मल्ल और नट तथा शस्त्र से आजीविकावाले मनुष्य और जुआ तथा मद्यपान में आसक्त पुरुष, यह रजोगुण की निकृष्टि गति है।

(४६) राजा लोग तथा क्षत्रिय, और राजों के पुरोहित और वाद वा झगड़ा करनेवाले, यह मध्यम राजस गति है।

(४७) गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष और देवताओं के अनुचर तथा सब अप्सरा, यह रजोगुण की गतियों में उत्तम गति है।

(४८) तप करनेवाले, यति, विप्र और विमानों पर घूमने वाले, तथा, (चमकते) नक्षत्र और दैत्य, सत्त्व गुण की अधम गति है।

(४९) यज्ञ करनेवाले, ऋषि लोग, देव और वेद, तारे और कालके ज्ञाता, पितर और साध्य, यह मध्यमा सात्विक गति है।

(५०) ब्रह्मा और विश्व को उत्पन्न करनेवाले (सृष्टि के आरम्भ के ब्रह्माण्डादि) और धर्म तथा महत्त्व और अव्यक्त (मूल प्रकृति) को विद्वान् लोग उत्तम सात्विक गति कहते हैं।

(५१) यह सम्पूर्ण तीन २ प्रकार के कर्म की सार्वभौतिक ३ प्रकार की सब सृष्टि कही।

(५२) इन्द्रियों के प्रसङ्ग से और धर्म के आचरण न करने से मूढ़ अधम मनुष्य कुत्सित गतियों को प्राप्त होते हैं।

❁ योनि प्राप्ति ❁

(५३) "यह जीव जो जो कर्म करके जिस जिस योनि में इस सृष्टि में जन्म लेता है, वह वह सब सुनो।

(५४) (ब्रह्महत्यादि) महापातक करनेवाले जीव बहुत वर्ष पर्यन्त घोर नरकों में पड़कर उसके क्षयसे संसार में ये जन्म धारण करते हैं कि:—

(५५) कुत्ता सूकर, गर्दभ, ऊंट, बैल, बकरा, भेड़, मृग, पक्षी, चाण्डाल और पुक्कस योनि को ब्रह्महत्यारा प्राप्त होता है।

(५६) मद्य पीनेवाला ब्राह्मण—कीड़े, मकौड़े, पतङ्ग, मैला खानेवाले पक्षियों और हिंसा करनेवाले प्राणियों की (योनि) को प्राप्त होता है।

(५७) चोरी करने से ब्राह्मण मकड़ी, सर्प, गिरगट, जल में रहनेवाले तथा हिंसावाले पिशाचों के जन्म को हजारों वार प्राप्त होता है।

(५८) गुरुपत्नी से गमन करनेवाला घास, गुच्छे, लता, कच्चे मांस के खानेवाले और क्रूर कर्म करनेवाले का जन्म सैकड़ों वार पाता है।

(५९) प्राणियों का बध करने के स्वभाववाले=(मार्जारादि) कच्चे मांस के खानेवाले होते हैं और अभक्ष्य के भक्षण करनेवाले=कृमि और चोर =परस्पर एक दूसरे को खानेवाले होते हैं। तथा चाण्डाल की स्त्री से गमन करनेवाले भी मरकर इसी गति को प्राप्त होते हैं।

(६०) पतितों के साथ रहने, पराई स्त्री से मैथुन करने तथा ब्राह्मण का धन चुराने से ब्रह्म राक्षस होता है।

(६१) मणि, मोती, मूंगा और नाना प्रकार के रत्नों को चुरानेसे हेमकार पक्षियों में जन्म होता है।

(६२) धान्य को चुराने से चूहा, कांसे के चुराने से हंस, जलके चुराने से मेंडक, मधुको चुराने से मक्खी वा डांस, दूध के चुराने से कौवा, रस को चुराने से कुत्ता और घृतको चुराने से नेवला होता है।

(६३) मांस को चुराने से गिद्ध, वपा (चरबी) के चुराने से जलकौवा नाम पक्षी, तेलको चुराने से तेलपीने वाला पक्षी लवण को चुराने से झींगरी और दधि के चुराने से बलाका नाम पक्षी होता है।

(६४) रेशमी कपड़े चुराने से तीतर, अलसी का वस्त्र चुराने से मेंडक, कपास के कपड़े चुराने से सारस, गायके चुराने से गोवा और गुड़ के चुराने से वाग्गुद नाम पक्षी होता है।

(६५) अच्छे सुगंधित पदार्थों को चुराने से छछून्दर, सागपात के चुराने से मोर, त्रिविध सिद्ध अन्न चुराने से गीदड़ और कच्चे अन्न चुराने से शल्यक होता है।

(६६) आग को चुराने से बक, शूर्पसूप आदि चुराने से गृहकारी पक्षी (मकड़ी) और रंगे वस्त्रों के चुराने से जीव जीवक (चकोर) होता है।

(६७) मृग, हाथी को चुराने से भेड़िया, घोड़े को चुराने से व्याघ्र, फल, मूल के चुराने से बन्दर और स्त्री के चुराने से रीछ, पीने के पानी चुराने से चातक पक्षी, सवारियों के चुराने से ऊंट तथा पशुओं के चुराने से बकरा होता है।

(६८) मनुष्य को दूसरे का कुछ असार पदार्थ भी चुराने और बिना होम किये हवि के भोजन करने से अवश्य तिर्यग्योनि प्राप्ति होती है।

(६९) स्त्री भी इसी प्रकार चुराने से दोषों को प्राप्त होती है और उसी पाप से उन्हीं जन्तुओं की स्त्री बनती है ।

(७०) चारो वर्ण बिना आपत्ति अपने नित्य कर्म न करने से कुत्सित योनि को प्राप्त होकर फिर शत्रुओं के दासत्व को प्राप्त होते हैं ।

(७१) अपने कर्म से भ्रष्ट ब्राह्मण मरकर वमन का भोजन करनेवाला ज्वालामुख, स्वकर्म भ्रष्ट क्षत्रिय पुरीष और शव का भोजन करनेवाला कटपूतनाख्य योनि विशेष में उत्पन्न होता है ।

(७१) स्वकर्म भ्रष्ट वैश्य मरकर पीव का भक्षण करने वाला मैत्राक्ष ज्योति नाम उत्पन्न होता और वैसेही स्वकर्म भ्रष्ट शूद्र कपड़े की जूं आदि खानेवाला चैलाशक नाम होता है ।

(७३) विषयासक्त पुरुष जैसे जैसे विषयों को सेवन करते हैं, वैसे २ उनमें उनकी कुशलता हो जाती है ।

(७४) ये निर्बुद्धि उन पाप कर्मों के अभ्यास से यहाँ उन उन योनियों में दुःखों को प्राप्त होते हैं ।

(७५) तामिस्रादि उग्र नरकों में दुःख का अनुभव करते हैं तथा असिपत्रवनादि बन्धन छेदनवाले घोर नरकों को प्राप्त होते हैं ।

(७६) और नाना प्रकार की पीड़ा तथा काक उलूक आदि से भक्षण और तप्त बालुकादि से तपाये जाते और दारुण कुम्भीपाकों को प्राप्त होते हैं ।

(७७) अधिक दुःखवाली तिर्यक् योनियों में नित्य २ उत्पन्न होने और नाना प्रकार की शीत आतप की पीड़ा तथा अनेक प्रकार के भयों को प्राप्त होते हैं ।

(७८) बारम्बार गर्भस्थान में वास अति कठिन उत्पत्ति

तथा उत्पन्न होने पर शृङ्खलादि के बन्धनों और दूसरे के हलकारेपन के दुःखों को प्राप्त होते हैं।

(७९) बन्धु और प्यारों की जुदाई तथा दुर्जनों के साथ रहना और धन कमाने का परिश्रम और धन का नाश और क्लेश से मित्र का मिलना तथा बिनाकारण शत्रुओं का उत्पन्न होना (ये सब प्राप्त होते हैं)।

(८०) अनिवारणीय वृद्धावस्था और व्याधियों से क्लेशित होना तथा नाना प्रकार के (क्षुत्पिपासादि) क्लेशों और दुर्जय मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

(८१) जिस जिस (सात्विक, राजस, तामस) भाव से जो जो कर्म करता है वैसे वैसे शरीर से उस उस फल का भोग करता है।

प्रश्नः—

कर्मकर्त्ता तथा फलभोक्ता शरीरहै वा आत्मा ?

उत्तर—कर्मकर्त्ता वा फलभोक्ता यद्यपि शरीर नहीं माना जाता किन्तु आत्मा माना जाता है और स्पष्ट कर न्यायसूत्र के वात्स्यायन भाष्य में लिखा भी है। अ० १ आह्निक १ सूत्र ९—

तत्रात्मासर्वस्यद्रष्टा, सर्वस्यभोक्ता, सर्वज्ञः, सर्वानुभावी तस्यभोगायतनं शरीरम्। भोगसाधनानीन्द्रियाणि भोक्तव्या इन्द्रियार्था भोगो बुद्धिः॥

शरीर में जो आत्मा है वह सब का द्रष्टा सब विषयों का भोक्ता सब विषयों का ज्ञाता और सब का अनुभव करनेवाला है। उस के भोग करने का स्थान वा आधार शरीर है भोग के साधन इन्द्रिय हैं और भोगने योग्य शब्दादि विषय तथा भोग

नाम बुद्धि का है कि जिस समय वा जिस काम में बुद्धि सुख मान रही वा सुखरूप है वही सुखभोग और दुःखभोग जानो। यद्यपि यहां आत्मा को कर्त्ता नहीं कहा केवल सुख दुःख का भोक्ता कहा है पर जो भोक्ता है वही कर्त्ता स्वयमेव सिद्ध हो गया। भोगना भी एक क्रिया है उस भोग का कर्त्ता भोक्ता कहलाता है। कर्त्ता एक सामान्य पद है भोक्ता विशेष है। जब आत्मा सामान्य क्रियाओं का कर्त्ता है तो सामान्य फलभोक्ता माना जावेगा और जब विशेष किसी निज कर्म का कर्त्ता कहा जावेगा तब विशेष फल का भोक्ता होगा। इस पूर्वोक्त प्रमाण से आत्मा का कर्त्ता भोक्ता होना सिद्ध हुआ। और कठोपनिषद् की तृतीयवल्ली में भी स्पष्ट लिखा है कि—

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

अर्थात् मन को वश में करनेवाले विद्वान् लोग शरीर इन्द्रिय और मन करके युक्त जीवात्मा को शुभाशुभ कर्मफलों का भोक्ता है ऐसा कहते हैं। इस से भी आत्मा का भोक्ता होना सिद्ध हो गया। परन्तु जैसे लोक में अनेक वस्तुओं के संयोग से होनेवाले काम को एक नहीं कर सकता—अर्थात् प्रत्येक काम के सिद्ध होने वा करने में कर्त्ता, कर्म करण सम्प्रदान और अधिकरण आदि कई कारक मिल के कार्यसिद्ध करते हैं इसीलिये उन सब का नाम कारक पड़ता है वे सब उस के एक २ अंश को सिद्ध करनेवाले होते हैं—रोटी करते समय पकानेवाला स्वतन्त्र होने से कर्त्ता कहाता वह न हो वा न करे तो रोटी नहीं हो सकती। दाल आटा चावल आदि कर्म हैं वे न हों तो किस को पकावे? अग्नि वा काष्ठ आदि साधन हैं उन के विना किस से पकावे? बटलोई आदि आधार है उन के बिना किस में पकावे? क्षुधा की निवृत्ति करना प्रयोजन

है वह न हो तो किस लिये पकावे ? तथा अनेक टुकड़े मिल के गाड़ी चलती है उस में एक २ बड़े हिस्से के न होने पर गाड़ी नहीं चल सकती परन्तु वहां भी पकाने और गाड़ी का चलानेवाला ही स्वतन्त्र होने से मुख्य कर्त्ता माना जाता है वह चाहे तो अन्य सामान्य साधनों के न होने पर भी कार्य कर सकता और वह न चाहे तो सब अङ्गों के ठीक होने पर भी काम नहीं हो सकता। परन्तु मुख्य सामग्री के बिना एक कर्त्ता भी कुछ नहीं कर सकता इसी विचार से वात्स्यायनभाष्यरूप न्याय में स्पष्ट लिखा है कि—

"नाशरीरस्यात्मनो भोगः कश्चिदस्तीति"

शरीर रहित जीवात्मा को किसी प्रकार का सुख दुःख भोग नहीं होता। इसी कारण शुभ अशुभ कर्मों का सुख दुःखरूप फलभोगने के लिये बार २ शरीर धारण करता है। इस सामान्य विचार से सिद्ध होगया कि आत्मा कर्त्ता भोक्ता है। अब यह शङ्का तुच्छ है कि इन्द्रियों के नष्ट होने वा सुषुप्ति समाधि आदि दशा में आत्मा को भोग क्यों नहीं होता इस का उत्तर यही है कि अग्नि के विना रसोय्या रोटी क्यों नहीं पका लेता ?। और अग्नि के बिना रोटी नहीं पका सकता तो उस पाचक को कोई अकर्त्ता अभोक्ता नहीं ठहरा सकता।

अब इस अंश पर एक और विचार यह है कि कोई २ सांख्यादि शास्त्र के कर्त्ता वा ज्ञाता विद्वान् लोग आत्मा को अकर्त्ता अभोक्ता भी मानते हैं जैसे भगवद्गीता के तृतीयाध्याय में भी लिखा है कि—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताऽहमिति मन्यते॥

प्रकृतिः कुरुते कर्म शुभाशुभफलात्मकम् ।
प्रकृतिश्च तदश्नाति त्रिषु लोकेषु कामगा ॥

इत्यादि इसी आशय के अनेक वचन मिलते हैं। सो यह बात भी केवल कल्पनामात्र नहीं है किन्तु इस अभिप्राय के सांख्य सूत्र भी प्रकट मिलते हैं। यदि इस का अधिक विवेचन किया जाय जो सूक्ष्मता बढ़ जाने से अधिक लेख करने पड़े और सर्वसाधारण को समझना कठिन हो जावे। इसलिये संक्षेप और सुगमता से इस का अभिप्राय यह है कि व्याकरण में जैसे प्रयोजक कर्त्ता की अपेक्षा प्रयोज्य कर्त्ता पाराधीन माना जाता है। प्रयोज्य कर्त्ता में क्रिया रहती और प्रयोज्य कर्त्ता ही कर्म करता है और प्रयोजक केवल प्रेरणामात्र करता है कर्म वा क्रिया कुछ नहीं करता तथापि वह मुख्य वा प्रधान कर्त्ता माना जाता है। प्रयोज्य प्रयोजक सम्बन्ध जड़ २ में चेतन २ में और जड़ चेतन में भी परस्पर रहता है। वायु की प्रेरणा से अग्नि जलता है यहां जड़ अग्नि का प्रयोजक जड़वायु है। चैत्र को मैत्र भेजता है यहां चेतन का प्रयोजक चेतन। सूर्य की वा शब्द की प्रेरणा से जागता है यहां चेतन का प्रयोजक जड़ है और देवदत्त लकड़ी को जलाता है यहां जड़ का प्रयोजक चेतन है। इसीप्रकार यहां भी अभेद विचार में तो जड़ चेतन वा प्रकृति पुरुष का संयोग चेतनता विशिष्ट शरीर ही सब काम कर रहा है! जब भेद पूर्वक विचार किया जाय तो हाथ पांव आदि शरीर के अवयव सब काम प्रत्यक्ष में करते हैं परन्तु चेतन आत्मा काम कराता और वही सुख दुःख वा हानि लाभ का भोगी होता है। केवल शरीर वा प्रकृति भी ज्ञानपूर्वक काम नहीं करती ऐसा हो तो मुर्दा शरीर भी काम करे सो प्रत्यक्षादि से विरुद्ध है केवल आत्मा भी काम नहीं कर सकता।

ऐसा होतो शरीर धारण किये बिना केवल आत्मा काम करे। और इस पक्ष में शरीरधारण करना निरर्थक हो जावे इस से सिद्ध हुआ कि जड़ चेतन का समुदाय ही कर्त्ता भोक्ता है क्रिया स्थूल में रहती है। ज्ञानपूर्वक हाथ पांव आदि को चलता देख कर हम जानते हैं कि यह कर्म करता है इस से प्रत्यक्ष में हाथ पांव काम करते हैं। ऊपर को फेंकना नीचे को फेंकना, सिकोड़ना पसारना वा चलना फिरना यह पांच प्रकार की क्रिया मुख्य है इस का करनेवाला शरीर है परन्तु शरीर के प्रयोज्य वा गौण होने से अनेक लोगों ने उस को कर्त्ता नहीं माना। और शरीर ही में क्रिया होने से तथा आत्मा के अदृश्य होने से बहुतों ने शरीर को ही प्रत्यक्षकर्त्ता माना है। और प्रत्यक्ष में जड़ चेतन का समुदाय ही कर्त्ता है सो जीवात्मा प्रयोजक और अधिष्ठाता होने से तथा फल वा परिणाम का स्वामी होने से कर्त्ता भोक्ता कहाता है यह ठीक है और उक्त प्रकार शरीर का कर्त्ता होना भी ठीक है केवल बुद्धि के ठीक न होने से हम लोगों को भ्रम होता है।

* हमारा कर्त्तव्य *

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति नकर्मलिप्यतेनरे॥

यजु० ४० । २

मनुष्य इस संसार में धर्म युक्त निष्काम कर्म को करता हुआ ही सौ वर्ष जीवन की इच्छा करे। इसप्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवर्तमान और व्यवहारों को चलानेहारे जीवन के इच्छुक होते हुवे तुझ मनुष्य में अधर्मयुक्त अवैदिक काम्य-कर्म नहीं लिप्त होता, किन्तु इससे अन्यथा (विरुद्ध, प्रतिकूल)

बर्त्ताव करने में कर्म जन्य दोषापत्तिरूप पापादि के लगने का अभाव नहीं होता अर्थात् अधर्मयुक्त अवैदिक ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध सकाम कर्म करने से मनुष्य कर्म में लिप्त हो ही जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

"धर्मयुक्त कर्मों को निष्काम और अधर्मयुक्त कर्मों को ही काम्य वा सकाम कर्म जानो।" अब जिस प्रकार के कर्त्तव्य कर्म हमें करने चाहिए सो आगे कहते हैं।

भगवान् श्री स्वामी शंकराचार्य्य जी का उपदेश।

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्मस्व नुष्ठीयताम्,
तेनेशस्यविधीयतामपचितिःकाम्येमतिस्त्यज्यताम्
संगः सत्सुविधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढाधीयताम्,
सद्विद्वानुपसर्पतामनुदिनं तत्पादुके सेव्यताम्॥ १ ॥

(अर्थ) सदा वेदों का पठन पाठन, वेदोक्त कर्म का अनुष्ठान, उस कर्म द्वारा परमेश्वर की उपासना, काम्य (अर्थात् सकाम अधर्म युक्त वेद प्रतिकूल) कर्म का त्याग, सज्जनों का संग परमेश्वर में दृढ़ भक्ति और सद्विद्वानों (अर्थात् आप्त विद्वान् उपदेशकों) के समीप जाकर उनकी यथाशक्य सेवा सुश्रूषा प्रतिदिन करना उचित है ॥ १ ॥ उक्त विद्वानों से उपदेश ग्रहण करके फिर—

ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुति शिरोवाक्यंसमाकर्ण्यताम्
दुस्तर्कात्सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसंधीयताम्।

वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः समाश्रीयताम्,
औदासीन्यमभीप्सतां जनकृपा नैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम् २

"ओ३म्" जो श्रुति (वेद) का शिरोमणि वाक्य तथा ब्रह्म का एकाक्षर नाम है, उसकी व्याख्या सुनना और उसके अर्थ का विचार करना (अथवा एकाक्षर जो शब्द ब्रह्म ओं है, उसका अर्थ विचारना तथा वेदानुकूल वाक्य का सुनना) दुष्ट तर्क-वाद से हटते (बचते) रहना, वेदमत के अनुसार तर्क का अनुसन्धान करना (जिससे वेदोक्तमार्ग की पुष्टि हो ऐसा तर्क) उक्त सुने हुये वाक्य का अर्थ विचारना, वेदानुकूल पक्ष का आश्रय (अवलम्बन) स्वीकार करना, दुष्टजनों के साथ मित्रता न शत्रु भाव रखना, किन्तु उदासीनता वर्तना, अन्य सब जनों विशेषतः दुखियों पर कृपा वा दयाभाव रखना और निठुरता का त्याग योगी को सदा करना उचित है ॥ २ ॥

इस प्रकार ब्रह्मचर्य और गृहस्थ में दुष्ट कर्मों का त्याग और सत्कर्मों तथा योगाभ्यास का अनुष्ठान करते हुए योग्य अधिकारी योगी बने।

एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयताम्,
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु संन्यस्यताम्
आत्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम् ३

पश्चात् वानप्रस्थाश्रम धारण करके सुखपूर्वक एकान्त स्थान में बैठकर समाधियोग के अभ्यास द्वारा पूर्णब्रह्म पर-मात्मा का विचार करे। इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को अनित्य जाने और शान्ति आदि शुभ कल्याणकारी गुणकर्म

स्वभाव का दृढ़तर धारण करे। तदनन्तर संन्यास लेकर वेदानुकूल कर्मकांडोक्त अग्निहोत्रादि सत्व गुण प्रधान कर्मों को भी त्यागकर शुद्ध सत्व के आश्रय केवल आत्मज्ञान का ही व्यसन (शौक) रखे और अपने गृह से शीघ्रही चला जाय ॥३॥

क्षुद्व्याधिश्चचिकित्स्यतां प्रतिदिनंभिक्षौषधंभुज्यताम्, स्वाद्वन्नं नचयाच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन सन्तुष्यताम्। शीतोष्णादि विषह्यतां नतु वृथा वाक्यं समुच्चार्यताम्, पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयताम् ॥ ४ ॥

उक्त संन्यासाश्रम में नित्यप्रति भिक्षा द्वारा प्राप्त अन्नरूपी औषधी का केवल इतना भोजन करे कि जिससे क्षुधारूपी रोग की निवृत्तिमात्र हो जाय, स्वादिष्ट अन्नादि पदार्थ भिक्षा लेने जाय तब कभी न मांगे जो कुछ दैवयोग से मिल जाय उसही में सन्तुष्ट रहे, शीतोष्णादि द्वन्द्वों का सहन करे, वृथा (निरर्थक वा व्यर्थ) वाक्य आवश्यकता बिना कभी न कहे। इस प्रकार धर्म के वर्ताव से पापों के समूह का नाश करना और सांसारिक सुखों को दोष दृष्टि से निरन्तर विचारना ही रहे ॥ ४ ॥

अब अन्तिम वक्तव्य यह है कि इस कर्ममीमांसा पुस्तक में इस बार इतने ही विचारों का समावेश किया गया है, यदि जनता इसे उपयुक्त समझेगी तो आगामी दूसरे संस्करण में प्रत्येक विषय को और भी विस्तार रूप से समझाने का प्रयत्न करूंगा। शमित्योम्।